कोढ़ी और छिपा हुआ ख़ज़ाना

ईशा सरदेसाई द्वारा पुनर्लिखित

वह आदमी हमेशा की ही तरह शहर के दूरदराज़ इलाक़ों की ओर जाने वाली एक कच्ची सड़क के किनारे बैठा था। उसके चितकबरे पैर धूल से हल्के ढके थे, उसके आस-पास वे कुछ चीज़ें थीं जिन्हें इस संसार में वह अपना कह सकता था—ज़ंग खाई हुई एक चम्मच, बासी रोटी के कुछ टुकड़े और तार-तार हो चुका एक पुराना कपड़ा।

एक तरह से, सड़क का यह हिस्सा भी उसी का था। जहाँ वह बैठता-उठता और सोया करता था, वहाँ की ज़मीन अब थोड़ी धँस चुकी थी, पर किसे चिन्ता थी कि शहर के बाहर, इस दूरदराज़ इलाक़े में क्या हो रहा है जो उसे वहाँ से हटाता। हाँ, अब तक सबको यह ज़रूर पता हो गया था कि शहर का यह कोढ़ी, भीख माँगते हुए अपने दिन यहीं बिताया करता था।

एक समय था जब यह आदमी शहर में रहा करता था, बल्कि शहर के उस इलाक़े में रहा करता था जहाँ रईस लोग रहते थे। उसके पास पैसा था, रुतबा था; वह कई सारी बड़ी-बड़ी पार्टियों में जाया करता। पर यह तो उस समय की बात थी जब उसे यह रोग नहीं हुआ था—समाज द्वारा अचानक उसे तिरस्कृत और बहिष्कृत करने से पहले की बात थी यह, वही समाज जिसने इतने साल उसे अपने सिर-आँखों पर बिठाया था।

अब, अपना कहने के लिए उसके पास बस सड़क का यह हिस्सा ही था जहाँ वह बैठा रहता था, और कुछ कबाड़ और छोटी-मोटी चीज़ें थीं जो उसने बटोर रखी थीं। सालों से ऐसा ही चला आ रहा था, और उसकी हालत में कोई सुधार नहीं हुआ था। अकसर वह भूखा ही रहता। उसका शरीर बिलकुल कृशकाय, बिलकुल कमज़ोर हो चुका था।

उस आदमी ने पास ही पड़ी एक सूखी लकड़ी उठाई और बिना सोचे-समझे मिट्टी में गोले खींचने लगा। उधर से गुज़र रहे एक पति-पत्नी ने उसे देखे बिना ही, उसकी ओर काँसे के कुछ सिक्के फेंके। “भगवान आपका भला करे,” दीनताभरी आवाज़ में उस आदमी ने कहा, मगर उसे अब भी यह बड़ा अजीब महसूस हो रहा था।

कहते-कहते उसका सिर ऊपर उठा, और उसकी नज़रें उस दम्पति पर पड़ीं। उसे लगा कि वह उन्हें पहचानता है—हाँ बिलकुल, उसने उस महिला को उन पार्टियों में देखा था जिनमें वह अकसर जाया

करता था। "कैसे दिन आ गए हैं?" उसने हताश होकर कहा, और वह फिर से लकड़ी से मिट्टी में लाइनें खींचने लगा। उसे अपने पूरे शरीर में भारीपन लग रहा था। उसकी आँखें बोझिल होने लगी थीं . . .

अगली सुबह कुछ लोग उसी सड़क से गुज़र रहे थे। पहले तो उनकी नज़र उस कोढ़ी पर नहीं पड़ी; इतने सालों में उसमें और आस-पास के वातावरण में ज़्यादा फ़र्क़ ही नहीं रह गया था। पर फिर एक आदमी ने पीछे मुड़कर देखा और उसे जो दिखा, उसकी वजह से वह दोबारा देखने पर मजबूर हो गया।

"देखो! देखो!" उसने कोढ़ी की ओर इशारा करते हुए अपने साथियों से कहा। "क्या वह आदमी . . . *मर गया है?*"

वे लोग उस कोढ़ी की तरफ़ दौड़े और देखा कि वह बिना हिले-डुले एक ओर करवट लिए लुढ़का पड़ा है। ऐसा लग रहा था कि उसकी साँस नहीं चल रही है। ज़मीन पर, उसके हाथ से कुछ दूरी पर एक लकड़ी की डण्डी पड़ी थी।

कुछ ही देर में, अधिकारी वहाँ से उसके शरीर को ले जाने और उस जगह की सफ़ाई कराने आए। जल्द ही वह थोड़ा-बहुत सामान जो उस कोढ़ी ने अपने लिए जमा कर रखा था, वह भी वहाँ से हटा दिया गया। फिर उन्होंने उस जगह को देखा जहाँ वह बैठा रहता था—वह धँसी हुई ज़मीन।

"वह आदमी संक्रमित था, उसे छूत का रोग था," उनमें से एक व्यक्ति ने कहा। "और वह *सालों* से यहीं बैठा करता था। हम कैसे मान लें कि ज़मीन साफ़ है?"

"तुम ठीक कहते हो," दूसरा आदमी बीच में बोल पड़ा। "अब तक तो कीटाणु ज़मीन में गहरे जा चुके होंगे! हमें यहाँ की मिट्टी खोदकर जला देनी चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि यहाँ सब कुछ कीटाणुओं से मुक्त हो, यहाँ कुछ भी संक्रमित न रहने पाए।"

तो, अगले दिन, अपना फावड़ा और कुदाल लेकर मज़दूर आए और ज़मीन खोदने लगे। वे लगभग एक घण्टे तक खोदते रहे—इतनी देर में ऊपर की मिट्टी हट गई और वहाँ एक छोटा गड्ढा बन गया—तभी उन्हें *टन्न* की आवाज़ सुनाई दी। यह लोहे के फावड़े के किसी कड़ी चीज़ से टकराने की आवाज़ थी। शायद, किसी चट्टान से?

एक मज़दूर गड्ढे में कूदा और नज़दीक से देखने लगा। उसने अपने फावड़े से एक-दो बार उसी जगह पर मारा। फिर से *टन्न* की आवाज़ आई। वह अपने हाथों से मिट्टी हटाने लगा। वहाँ—वहाँ कुछ *चमक* रहा था क्या? वह रुका, उसने अपनी आँखें मलीं, दोबारा देखा कि उसके साथ कहीं कोई मज़ाक़ तो

नहीं हो रहा है। नहीं, इसमें कोई शक़ नहीं था। वह छोटा-सा कण था, मिट्टी में दबा हुआ, पर वह पीले धातु जैसा था और चमक रहा था। वह जल्दी-जल्दी मिट्टी हटाने लगा। सोने का बड़ा-सा, खुरदरा टुकड़ा उसके सामने आ गया। उसके साथियों का मुँह खुला का खुला रह गया।

जल्द ही मज़दूर गड्ढे के चारों ओर खोदने लगे। उस ख़ज़ाने को निकालने में मदद करने के लिए वे अन्दर कूद पड़े। कोढ़ी, कीटाणु, वे सब यहाँ आए क्यों थे—अब यह सब किसी को याद ही नहीं था। उस पहले सोने के टुकड़े के मिलने के बाद सैकड़ों, फिर *हज़ारों* टुकड़े और मिले। यह एक सचमुच की सोने की खान थी, जो सब ओर फैली हुई थी, और उस खान का मुख्य स्थान वहीं, उसी ज़मीन के ठीक नीचे था जहाँ वह बेचारा भिखारी बैठा करता था।

"क्या तुम्हें यक़ीन हो रहा है?" एक मज़दूर ने कुछ दिन बाद कहा। वह अपने फावड़े पर झुककर, अपने एक साथी के साथ इस जगह का मुआइना कर रहा था। सोने की तलाश में काफ़ी सड़क खुद चुकी थी; अब तो यह ज़मीन के नीचे एक सुरंग जैसी लगने लगी थी, बाहर जहाँ-तहाँ मिट्टी के ढेर लगे थे, और मज़दूर अपने फावड़ों की *टन्न-टन्न-टन्न* के साथ-साथ एक-दूसरे को निर्देश दे रहे थे। उस मज़दूर ने अपना सिर हिलाते हुए कहा, "पूरे समय, शहर का वह कोढ़ी इस बड़े ख़ज़ाने के ऊपर बैठा रहा और भीख माँगता रहा।"

तभी हल्की-हल्की हवा चलने लगी जिससे सड़क के किनारे पड़ी वह डण्डी अपनी जगह से थोड़ी हिली; उसकी तो अब किसी को याद भी नहीं थी।

© २०२४ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।